BIHAR SHODH SAMAAGAM, VOL. 2, ISSUE 1, p.p 14-17
(2024)

दैनिक मजदूर के ओ दिन

अभिलाषा कुमारी

सारांश :

कोराना काल जिसकी शुरूआत एक वैश्विक आपदा के रूप में पूरे हुई धीरे–धीरे विश्व घरातल पर पैर फैला दी। इसकी शुरूआत वर्ष 2019 में चीन ''वुहान शहर'' से हुई, लेकिन चीन से इसे पूरे वैश्विक मंच साझा नही किया। भारत और विश्व के लिए अब तक यह साल बहुत बुरा बीता है। हर स्तर पर इसने जख्म ही दिए हैं। कोरोना काल के दौरान एक शब्द बखूबी सबके जहन में बैठ गई वह शब्द हैं ''दैनिक मजदूर''। दैनिक मजदूर अपने आप में से बचाने की जद्दोजहद कर रहा है। इस बीमारी ने भारत को कम से कम बीस साल पीछे धकेल दिया है। इस नई परिस्थितियों में सबसे बड़ी समस्या किसी के लिए उभर कर आई तो वह वर्ग दैनिक जमदूर की थी, ऐसे वर्ग में आते हैं जो दैनिक मजदूरी पर अपना और अपने परिवार का भरण पोषण करते हैं, कोरोना काल इनके लिए एक अभिषाप बनकर आई। भारत ने शुरू में इस बीमारी का मुकाबला करने में लॉकडाउन का सहारा लिया। सोशल डिस्टैंसिंग का सहारा लिया। और एक नजर में यह बहुत अच्छे फैसले थे। पर जब कमाई के साधन छिन जाएँ, तो दैनिक मजदूर वर्ग तबके के लोग क्या खाएं और अपने बच्चों को क्या खिलाएँ। जिन कंधों पर उसने कभी शहर की की हर जरूर का बोझ उठााया, आसमान छूती इमारतों के लिए अपने सिर पर इंटें ढोई, तपती गर्मी और बहते पसीने के बीच जिसके हाथ कभी नही थके, वो मजदूर आज मायूस और हताश इस नजरों के के साथ उसी शहर को छोड़कर जा रहा है। उसकी उंगली थामे मासूम बच्चों की निगाहें, उसे पूछ रही है कि पल–भर में ये शहर इतना पराया क्यों हो गया। कोरोना वायरस के कारण पूरे देश की रफ्तार भले ही थम गई हो, लेकिन इनके लिए एक सवाल हैं अब इनका क्या होगा।

दैनिक मजदूर के ओ दिन

इस बीमारी के बीच सबसे ज्यादा बुरी हालत से दैनिक मजदूर वर्ग गुजरे, लाखों की संख्या में मजदूर अपने बीवी, बच्चों सहित नंगे पैर सैंकड़ों मील का सफर तय करने पर मजबूर हुए। लॉकडाउन के दौरान दैनिक मजदूरों के पलायन को दूसरा विभाजन तक कहा गया और सच ही है, हमारी पीढ़ी के लोग जिन्होंने विभाजन के सिर्फ किस्से सुने थे,उसने उस भयावहता का पहली बार अनुभव किया। हम इतने असहाय कभी नहीं थे कि कोई मदद चाहे और हम

घर में दुबके सिर्फ उसकी हालत पर दुःख व्यक्त करते रहें। संभवतः ये दौर हमारी पीढ़ी का सबसे बुरा दौर है। कोरोना काल के संकट में हम अमानवीयता की पराकाष्ठा भी साथ ही देख रहे है। इसके लिए किससे सवाल करें – सरकार से, मीडिया से या फिर खुद से। क्योंकि दोषी तो हम सब ही हैं। हमने दैनिक मजदूरों को बिना खाए पीए, थके हारे, कभी बच्चों को तो कभी सूटकेष को कंधों पर लादे जाते हुए देखा है। हम एक ओर विकसित राष्ट्र बनने का सपना देखते हैं और दूसरी ओर हम अपने मजदूरों और उनके परिवारों का ध्यान नहीं रख पाते। क्या कोई राष्ट्र अपने हाशिये के समाज को छोड़कर विकसित हो सकता है। अगर ऐसे विकसित हो भी जाए तो क्या वह विकास वास्तविक विकास माना जाएगा।

सवाल सरकार से भी बनता है कि जब लॉकडाउन किया गया तो क्या सरकार को इस समस्या का बिल्कुल अंदाजा नहीं था कि रोज कमाने और रोज खाने वालों के जीवन पर कितना बड़ा संकट आएगा। अगर पता था तो सरकार की क्या नीति रही। कैसी विडंबना है कि हम अपने ही देशवासियों के साथ परदेसियों जैसा सलूक कर रहे हैं। हालांकि कोई भी आपदा या परेशानी बता कर नहीं आती है। अगर सूचित करेगी तो परेशानी थोड़े ही होगी। लेकिन इस आपदा की दस्तक हमें मिलने लगी थी। तब भी हमने जो कदम उठाए वो पर्याप्त नहीं थे। ये सरकार और हम सबके के लिए एक चुनौती थी और कहना न होगा कि सरकार और हम इस चुनौती को संभालने में विफल रहे। कुछ तो जागरूकता की कमी और कुछ रोजी–रोटी का संकट। सोचिये जरा, छोटे–छोटे बच्चे, बीमार बूढ़े, गर्भवती महिलाएं बोझा ढोए चली जा रही हैं। नन्हें बच्चों तक जिन्हें बोझ का मतलब तक नहीं मालूम बोझा लादे, बिना चप्पलों के चले जा रहे हैं। इस दौरान जैसी तस्वीरें अखबारों और मीडिया में आई हैं, वो अमानवीय मालूम होती हैं। किसी माँ ने अपने एक बच्चे के सामने दूसरे बच्चे को जन्म दिया

डा. कोमल कुमारी
शोद्यार्थी
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

और चल बसी, बच्चा उसकी छाती के पास बिलख रहा है। कोई बच्चा किसी अटैची या सूटकेस पर औंधा पड़ा सामान की तरह खींचा जा रहा है। कोई मजदूर रास्ते में पड़े कूड़े के ढेर में बचे हुए खाद्यसामग्री को खाने को मजबूर है, ये सब तस्वीरें बहुत वीभत्स हैं, साथ ही सवालिया निशान हैं हम पर। हाईवे पर कितने मजदूर सड़क दुर्घटना में मारे गए, रेल की पटरियों पर उनके शव क्षत–विक्षत हालत में टुकड़ों में बिखरे पड़े हैं। और साथ में पड़ी हैं रोटियाँ। इन रोटियों के लिए ही वो और उनका परिवार यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ पलायन करने को मजबूर हैं। उनके अपने राज्य उन्हें घुसने नहीं दे रहे। इस महामारी ने बहुतो की कलई खोलकर रख दी है।

हमने अपने भीतर के भारतीयता को ही नहीं बल्कि इंसान को भी मार दिया है, जिसके लिए दूसरे का दर्द अपना दर्द ना बने वहाँ कैसी इंसानियत। कोविड 19 बहुत सी समस्याओं को लेकर आया। कोई संस्थान, बैंक, इंडस्ट्री, सरकार, मीडिया न तो इसके लिए पहले से तैयार था और न ही किसी को यह पता था कि यह लड़ाई इतनी लंबी चलने वाली है। सबको लगा कि कुछ दिन बाद सब ठीक हो जाएगा। पर एक लॉकडाउन के बाद भी जब केस बढ़ते चले गए तो लोगों की जमापूंजी खत्म होने लगी, राशन की दिक्कतें आने लगी, लोगो का धैर्य जवाब दे गया। सरकारों ने छुटपुट कोशिशें कीं जैसे खाना–बांटना, पैसे–ट्रांसफर कर फौरी राहत देना। पर ये सिर्फ कुछ ही दिनों में खत्म हो गया। ऐसे समय में कब तक वे घर में खुद को बाँधे रखते। उन्होंने अपने गाँव और परिवार वालों के पास जाना ठीक समझा होगा। सोचा होगा मरें तो कम से कम अपने घर परिवार वालों के साथ। अपने ही मुल्क में वे खुद को बेगाना महसूस करने लगे। इस कोरोना काल में बेरोजगारी, जमापूंजी की समाप्ति, सैलरी न मिलना कोढ़ में खाज बन गए। सरकार ने गरीब तबके के लोगों की सहायता करने के लिए कई बार लोगों से अपील की और कहा कि आप किसी का वेतन न रोकें। पर सरकार ये भूल गई कि वेतन कोई तब देगा जब उसको खुद वेतन मिले। दैनिक मजदूर के लिए कोई वैकल्पिक व्यवस्था नही थी। ये मजदूर निहायत ही खराब परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत करते है। ये फैकिट्रयों में ही सोते एंव खाते हैं और आज पूरा विश्व इनकी समस्या को देख रहा है। औद्योगिक क्षेत्रों में दैनिक मजदूरों के लिए सरकारी आवास या परिवहन या ऐसी कोई सुविधा इन्हें विशेष रूप से उपलब्ध नहीं कराई जाती है। कारखानों का काम हैं उत्पादन करना और दैनिक मजदूरों का काम हैं इन कठिन परिस्थितियों में जीवित रहना। हम जानते हैं मजदूर इन फैक्ट्रियों में नित्य औद्योगिक रसायनों के संपर्क में आते हैं जिसके फलस्वरूप वे जहरीली गैस के रिसाव या प्रदूषण के चपेट में आते हैं, लकिन क्या हमने कभी ठहरकर यह जानने की कोशिश की है कि ये अनौपारिक, अवैध क्यों बने हैं–इसलिए क्योंकि वहां रहने की कोई स्थायी व्यवस्था औद्योगिक ईकाई के द्वारा सुनिश्चित नही की गई थी। यहां ध्यान देने योग्य बात हैं कि श्रम को रोजगार और उद्योग को श्रम की आवश्यकता हैं दोनों ही एक दूसरे के पूरक है। पहली बार दैनिक मजदूर की मुश्किलें ही नहीं, राज्यवार उससे जुड़ी पेचिदगियां भी खुलकर हम सभी ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिखी हैं। एक सथा बड़े पैमाने पर मजदूरों का अपने घरों कौ लौटने के असाधारण फैसले के जवाब में राज्य और केन्द्र सरकार के पास हालात सामान्य करने की कोई ठोस योजना नहीं दिखी। पूर्णबंदी में लगभग आबादी के 30 प्रतिशत असंगठित मजदूर बेरोजगार हुए है। राष्ट्री सैंपल सर्वे कार्यालय ''एनएसएसओ'' के आंकड़ो के मुताबिक भारत में श्रम शक्ति भागीदारी दर करीब आधा रह गई है।

पहली बार ऐसा हुआ हैं कि 15 साल के उपर काम करने वाली भारत की आधी आबादी, किसी भी आर्थिक गतिविधि में योगदान नहीं दे पा रही । सेंटर फॉर मॉरिटरिंग इंडियन इकोनमी ''ीएमआइइ'' के ताजा आंकड़ों के मुताबिक अप्रैल माह तक भारत में बेराजगाारी 27 फीसदी तक जा चुकी थी। हमारे देश की जीडीपी का 10 फीसदी हिस्सा इन दैनिक मजदूर की वजह से आता है। इकोनॉकिक सवे के मुताकिब, आज की तारीख में हमारे देश में लगभग 30 फीसदी मजदूरों का है जैसा कि उपर वर्णित हैं इसमें 70 फीसदी महिलाएं वर्ग से आते है। पूर्णबंदी के दौरान लगभग 50 फिसदी मजदूर ऐसे वर्ग से बेरोजगार हो गए जो निर्माण, उत्पादन और कृषि क्षेत्र से जुड़े थे। भारत में आंतरिक प्रवासन के तहत एक इलाके से दूसरे इलाके में जाने वाले मजदूर वर्ग की आय देश की डीडीपी का लगभग 10 फीसदी है। ये दैनिक मजदूर इसका एक तिहाई यानी जीडीपी का लगभग तीन फीसदी अपने घर भेजते हैं। मौजूदा जीडीपी के हिसाब से या राशि लगभग 4 लाख करोड़ रूपये है। यह राशि मुख्य रूप से, बिहार, उत्तर प्रदेश, ओडीशा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, और झारखंड जैसे राज्यों में भेजी जाती है। आप दैनिक मजदूर की व्यापकता की अवधारण को अब

भली–भांति समझ चुके होंगे। कोरोणा काल में औधोगिक इकाई के साथ छोंटे कुटीर उद्योग, लधु–उद्योग और निजी उद्योग के स्वामीत्व के द्वारा गगण्य स्थानों को छोड़ दिया जाये तो इनके साथ मित्रता, या मानवता जैसा बिल्कुल व्यवहार नहीं किया गया। हर दिन भूख, जिल्लत और अपने देश में बेगानेपन का दंश झेलने मजदूरों के हुजूम–दर–हुजूम चारों चारों तरफ दिखाई दे रहे है। यहां गौर कर सकते हैं कि वे लगभग सभी वे दैनिक मजदूर जिनमे काम और उसके साथ जुड़ी कमाई ठप्प होने से ये सभी एकदम अपने आप को असहाय महसूस कर रहे हैं। गौर करने की बात यह भी है कि इस युवा भारत में हर दर्जे का साहस है, कोरोना विषाणु ने दुनिया को मौत का दरिया बनया दिया हैं, लेकिन इन्हें मौत का वैसा भय नहीं है, जैसा की अलीशान घरों में रहने वाले को सता रहा था। मीडिया में मजदूरों से हाने वाली बातचीत के ब्यौरां से पता चलता हैं कि दैनिक मजदूर अपनी इस स्थिति से कोई शिकायत नहीं है। वे इस बात से आश्वत हैं कि किसी तरह घर पहुंच जाने, और जब सामान्य परिस्थिति के बाद काम पर लौटने की बात करते है। भारत सहित पूरी दुनिया में ज्यादातार मजदूर संगठन समाजवाद, सामाजिक न्यायवाद, कल्याणवाद सरीखी प्रगतिशील विचारधाराओं से सम्बद्ध होते हैं।

मजदूर संगठन मजदूरों के वेतन–बोनस, सेवा–शर्तो, काम के घंटो, काम करने की परिस्थितियों के विभिन्न मुद्दों पर सरकारों अथवा औद्योगिक इकाई के मालिकों से संवाद, और जरूरर पड़ने पर इनके अधिकार और सुरक्षा के लिए संघर्ष करते हैं। बड़े मजदूर संगठनों की राष्ट्रीय एंव अंतराष्ट्रीय स्तर पर श्रम कानूनों के निर्माण, या उसमें बदलाव में भूमिका होती है। ये कहने की जरूरत नहीं है कि भारत में मजदूर हित लंबे सयम से गतिरोध का शिकार हो चुका है। उपर्युक्त विवेचना में एक तथ्य उभर कर आती हैं कि दैनिक मजदूर के हित और उनके कल्याण के लिए अभी सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संगठन शून्य हो गई है। आपको जैसा की ज्ञात हैं कि देश के कई राज्यों ने कोरोना से लड़ने के नाम पर श्रम कानून के कई प्रावधानों को तीन सालों के लिए ताक पर रख दिया हैं, यानि उद्योगपतियें और मालिकों को छूट दे दी गई है वे मजदूरों की बेहतरी के लिए बनाए गए कानून का पालन करने के लिए बाध्य नही हैं। उत्तर प्रदेश ने ऐसी ही कानून का निर्माण कर दिया। तथापि दैनिक मजदूर के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकार ने समय–समय पर आर्थिक सहायता प्रदान की लेकिन क्या यह इनकी जरूरत पूर्ण कर पा रही थी। क्या इस पैकेज से केंद्र और राज्य सरकार ने दैनिक मजदूर वर्ग से अपनी जिम्मेवारियों से बचती नजर आई। दैनिक मजदूरों को जीवन यापन के लिए अपने दैनिक जीवन से जुड़ी आधारभूत वस्तुओं को खरीदना होता है। कोरोना के दौरान मंहगाई और बचत का ना होना इनके लिए एक अभिषाप बनकर सामने आई थी। हम सभी जानते हैं, ये इतना कमाते हैं कि इससे इनके घर का दो वक्त का चूल्हा जल सके, लेकिन कोरोना के दौरान जो बंदी आई वह एक व्यापक रूप में आई इनके काम और छोटे रोजगार एकदम से बंद हो गये थे, स्थिति इतनी बदतर हो गई ये कोरोना से भले ही ना मरते लेकिन इनकी मृत्यु भूख से जरूर हो जाती। पूरे भारत में जिस तरह से बंदी की गई इस पर आज भी सवाल उठता हैं क्या यह एक सही फैसला था, जिसे थोड़ी जल्दीबाजी में नही थोपी गई, तथापि इस फैंसले से जो वर्ग सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ वह दैनिक मजदूर वर्ग का था। सरकार की कोशिशों के बावजूद भी वयवस्थागत कमियों के कारण दैनिक मजदूर वर्ग तक खाने–पीने के सामान की आपूर्ति ठीक से नहीं हो पा रही था। यद्यपि वित्तमंत्री निर्मला सितारमण ने एक पैकेज के तहत 80 करोड़ गरीब को अगले तीन महीने तक मुफ्त आटा और चावल और एक किलो दाल देने की घोषणा की गई थी। इसके अलावा गरीब महिलाओं को सिलेंडर भी मुफ्त देने की व्यवस्था की। 1.70 करोड़ लाख करोड़ पैकेज का एलान करते हुए वित्त मंत्री ने कहा कि गरीबों के लिए खानों का इंतजाम किया जाएगा और डीबीटी के माध्यम से पैसे भी ट्रांसफर किए जाएंगे।

वित्त मंत्री ने यह स्पस्ट किया की दैनिक मजदूर और शहरी–ग्रामीण गरीबों की तुरंत आवश्यकता के लिए पैकेज तैयार है, कोई भी भूखा नहीं रहेगा। इस तरह से केंद्र सरकार द्वारा कई साकारात्मक ठोस कदम जरूर उठाई गई लेकिन इस ठोस कदम में कहीं भी दैनिक मजदूर के लिए रोजगार उपलब्धता की बात नहीं की गई। दैनिक मजदूर अपने आस–पास, चौक–चौराहों, अपने आस–पास की शहर की ओर उन्नमुख करता हैं, लेकिन कोरोना काल के दौरान ये सभी चीजें पूर्ण बंद थी, कोई व्यक्ति अपने घर से बाहर ही नहीं निकल सकता था, तो दैनिक मजदूर को कोई क्या रोजगार मिल पाता। कोरोणा काल के बंदी खुल जाने के बाद भी देश–व्यापी स्पर पर मेहनकश दैनिक मजदूरों की दुर्दशा का सिलसिला थमा नहीं है, हर दिन भूख, जिल्ललत और ही देश

में बेगानेपर का दंश झेलते मजदूरों के हूजूम–दर हुजूम चारों तरफ देखे जा सकते है। रोज कमाकर अपना पेट भरने वाले इन दैनिक मजदूरों के लिए लॉक डाउन की स्थिति में रोजगार का संकट छाया हुआ है और इन्हें खाने पीने के लिए लाले पड़े है। इतना तो तय हैं कि लॉक डाउन का जो दंश दैनिक मजदूर वर्ग को मिला हैं, उसे किसी अन्य वर्ग महसूस कर आँखे नम कर लेते है। कोरोना काल एक ऐसा समय था, जिसमें सबसे ज्यादा प्रभावित वर्ग दैनिक मजदूर वर्ग थे, कहीं से राहत पैकेज का इंतजार करते रहते थे, कि कोई व्यक्ति कब उनके दरवाजे पर आकर उन्हें कुछ खाने–पीने की चींजे उपलब्ध करा दे। रोजगार शब्द उनके लिए उस समय एक मजाक बनकर रह गई थी। दैनिक मजदूर उस समय कई समस्या से रूबरू हो रहे थे, कई राज्यों में जब कोरोना के समय कई राज्यों में बाढ़ की समस्या भी इनके लिए एक बड़ी समस्या थी। गांव में जो भी इन्हें छोटी–मोटी रोजगार कृषि क्षेत्र में उपलब्ध हो सकती थीं, वह भी शून्य हो गई थी। यह एक ऐसा समय था जब प्रकृति भी इनकी परीक्षा ले रही थी।

हर मजदूर के पास सिर्फ बेवेशी के अलावा कुछ नही था। इस विपरीत परिस्थिति में दैनिक मजदूर से सामान्य वर्ग ने भी दूरी बना ली थी, इनके मन में एक डर बैठ गया था, मजदूर वर्ग झूंड में कार्य करते हैं, तो इनमें कोरोना की फैलने की संभावना ज्यादा होगी तो हर समाज इनके एक धृणा का भाव रख रहा था। यह किसी भी सभ्य समाज के लिए स्वीकार नहीं थी, लेकिन वह समाज अपने परिवार के लिए खुद के लिए बेबस हो गया था। तथापि समाज के कई लोग ने लंगर या अन्य माध्यम से इस काल में भी गरीब मजदूर की हर संभव मदद प्रदान की और कोशिश की उन्हें कमसे कम देा वक्त का रोटी प्रदान कर सके। बेरोजगारी कोरोणा काल में दैनिक मजदूर के ग्रामीण क्षेत्र की एक बड़ी समस्या बनकर उभरी थी। बदलते हालात में गांवों में रोजगाार उपलब्ध नहीं होने से लागो को परिवार का गुजर बसर करने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। कोरोना काल में बड़ी संख्या में मजदूर दूसरे प्रांतों से अपने घर इस इरादे के साथ पहुंचे कि अब वे वापस नहीं लौटेंगे, लेकिन गांवों में रोजगार के अवसर नहीं मिलने से एक बार फिर लोगों को मजबूरी में पलायन करना पड़ रहा है। दैनिक मजदूर ने एक फिर दूसरे प्रांतों की ओर रूख कर लिया है। कोरोना काल में मजदूरों को लेकर जो सरकारी घोषणाएं तो हुई, लेकिन वे घोषणाएं धरातर पर दम तोड़ चुकी हैं। बाहर से आए दैनिक मजदूर के लिए मनरेगा समेत अन्य योजनाओं में रोजगार सृजन की बात कही गई, धरातल पर मजदूरों के हालात बदलते नहीं दिखाई दे रहे हैं। मजदूरों को मनरेगा का लाभ नही मिल पा रहा है। बदलते समय के साथ–साथ गांव भी बदल रहे हैं। गांव के कल और आज में बहुत फर्क आ गया है। लोग बदल गए, दौर बदल गया। परिवर्तन के इस दौर में गांव के लोग भी आसमान का सफर करने लगे हैं। इस मिथक को अगर हम मान भी लें, तो इनके पास क्या विकल्प हैं, दैनिक मजदूर कोई हर दिन काम की तलाश रहती है, जो उसे गांव या आस–पास में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं, अगर कोई काम उपलब्ध भी करा देते हैं, तो उसे वाजिब मेहताना नहीं दिया जाता है। दैनिक मजदूर कोरोना काल से उत्पन्न अपनी आर्थिक समस्या को सहज करने के लिए एक फिर शहर की ओर उन्मुख कर लिया है। कोरोना काल में दैनिक मजदूर की भयावकता और असहणीय पहलूओं को सम्माहित करते हुये उनके लिए नये सवेरे की इंतजार हैं। जिसमें वह पूर्ण रूप से अपने विस्थापित परिस्थिति को पहले जैसे प्राप्त कर ले, और नयी सवेरे में उन्हें एक खुशहाल और सुखद सवेरा का अनुभव प्राप्त हो।

संदर्भ ग्रंथ :

1. जनसत्ता दैनिक समाचार पत्र, नई दिल्ली
2. क्रमश
3. ऋषभदेव शर्मा, कोरोना काल की डायरी, पृष्ठ, 45
4. विनोद कापड़ी, सात दिन, सात रात, सात प्रवासी, पृष्ठ 11
5. आकाश माथुर, कोरोना काल, पृष्ठ 34
6. बीबीसी न्यूज, कोरोना दौरद में दिहाड़ी मजदूर
7. अफरोज आलम साहिल, लॉकडाउन, पृष्ठ 23
8. आरती उपाध्याय, कोरोना काल और शिक्षा, पृष्ठ 62

डा. कोमल कुमारी
शोद्यार्थी
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर